ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

KEY WORDS:

हरियाणा की हिन्दी सतसई परम्परा

सुमन

एम.ए.हिन्दी, नेट, बी.एड, यूजीसी नैट (हिन्दी), गांव व डाकखाना–माधोसिंघाना, जिला व तहसील सिरसा, (हरियाणा)

'सतसई' : व्याख्या और पारम्परिक पृष्ठभूमि :

'सतसई' का शाब्दिक अर्थ है–सात सौ। यह दो शब्दों के योग से बना है– सत+सई। 'सत' शब्द 'सप्त' का तद्भव रूप है–जिसका अर्थ है–सात। 'सई' शब्द 'शत' का विकसित रूप है जिसका अर्थ है–सौ। 'सौ' शब्द की व्युत्पत्ति 'शत' शब्द से हुई है, यथा–शत झ सय झ सई झ सै झ सौ। डॉ. शंभुनाथ सिंह के अनुसार, 'सतसई' 'सप्तशती' का तद्भव रूप है। संख्यामूलक काव्य संकलन में सात सौ छंदों का संकलन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रूढ़ि बन गई है।[1] विद्वानों ने प्रायः सात सौ छंदों की रचना को 'सतसई' की संज्ञा दी है। 'सतसई' को संख्यापरक काव्यों की श्रेणी में रखा जाता है। संख्यापरक काव्य परम्परा में 'पंचाशिका', 'शतक', 'शती', 'नौ सई', 'ग्यारह सई', 'चौदह सई', 'हजारा' आदि नाम–नामांतर प्रचलित रहे हैं। 'सतसई' भी संख्यापरक काव्य–परम्परा का ही एक विशिष्ट रूप है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रबन्ध काव्य के साथ–साथ मुक्तक काव्य परम्परा में अमरूक कवि का 'अमरूक शतकम्', भर्तृहरि का 'श्रृंगार शतकम्' 'वैराग्यशतकम्' और 'नीति शतकम्' आदि संख्या पर आधारित मुक्तक काव्य बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। सातवीं–आठवीं शताब्दी तक 'शतक' परम्परा और उससे आगे बारहवीं शती में गोवर्धनाचार्य की 'आर्य सप्तशती' तक एक 'सप्तशती परम्परा' मिलती है। इसी बीच लौकिक संस्कृति से भाषायी विकास परम्परा में 500 वर्ष ईसापूर्व से लेकर 1000 ईस्वीं तक मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ–;प्रथम प्राकृत–पालि, द्वितीय प्राकृत तथा तृतीय प्राकृत–अपभ्रंशद्ध विकसित हुई। अपभ्रंश भाषा, प्राकृत और पुरानी हिन्दी (अवहट्ट) के बीच की कड़ी है। इसी अपभ्रंश में पाँचवीं शताब्दी के कवि 'हाल' द्वारा 'गाहा सतसई' (गाथा सप्तशती) रची गयी। इसी से भारतीय साहित्य में सतसई परम्परा का आरम्भ माना जाता है। सातवीं–आठवीं शताब्दी में रचित 'अमरूक शतक' और बाहरवीं शती के 'आर्य सप्तशती' आदि पर 'हाल' कवि की 'गाहा सतसई' की ही प्रेरणा रही है। यही प्रेरणा हिन्दी सतसई परम्परा के रूप में प्रतिफलित हुई।

सामान्य रूप से सात सौ या इससे कुछ अधिक मुक्तकों के संग्रहों को सतसई की संज्ञा दी जाती है। आगे चलकर एक हजार या इससे कुछ अधिक मुक्तक संग्रह 'हजारा' के नाम से भी पाये जाते हैं। भाषा–विकास में 'तद्भवीकरण' एक प्रमुख प्रक्रिया है। उसी के तहत संस्कृत के 'सप्त' शब्द का 'सत' तथा शती का 'सई' रूप बना है। प्रायः देखा गया है कि जब किसी युग में कोई काव्यरूप अत्यन्त लोकप्रिय हो जाता है तब वह महनीय काव्यरूढ़ि के रूप में कविजनों के मध्य कवि कर्म की कसौटी बन जाता है। सतसई की रचना करके कविजन एक ओर इस परम्परा में शुमार हो जाते हैं और दूसरी ओर छोटे से मुक्तक में अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की मनोहारी प्रस्तुति करके यश एवं धनार्जन के साथ आत्मतोष का अनुभव करते हैं। इस प्रकार के संख्यपरक मुक्तकों के संग्रह शती, शतक, हजारा, ग्यारह सई आदि संज्ञाओं से भी प्रचलित हैं किन्तु 'सतसई' नाम तो रूढ़िपरक बन गया है।

भारतीय काव्यशास्त्र के प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्य के दो रूपों में मुक्तक वह काव्य है जिसकी परिभाषा में कहा गया है–'पूर्वापर निरपेक्षेणापि यत् चर्वणाम् रसतामुपैति तत् मुक्तकम्' अर्थात् मुक्त काव्य का प्रत्येक शब्द अपने से पूर्व और अपने से बाद के छन्द से निरपेक्ष होता है। हर छन्द का कथ्य और भाव सम्पदा सर्वथा पृथक् होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इस सम्बन्ध में यह कथन ध्यातव्य हैं–'मुक्तक में प्रबन्ध काव्य के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथ्य प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक, मग्न हो जाता है और हृदय में कई स्थायी भाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस की ऐसी फुहार पड़ती है कि हृदय–कालिका थोड़ी देर के लिए सिक्त होकर खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता। इसीलिए यह सामाजिकों की दृष्टि में अधिक उपयोगी होता है।'

'सतसई' ऐसे ही मुक्तकों की संगृहीत रचना का नाम है। इन मुक्तकों में जीवन और जगत के किसी एक भावचित्र, एक दृश्य एक परिस्थिति विशेष का रसमय एवं कलात्मक चित्राण होता है।[2] जहाँ तक इसकी पारम्परिक पृष्ठभूमि की प्रामाणिकता का प्रश्न है तो इस संदर्भ में मतवैविध्य है। पं. विश्वनाथ मिश्र ने इसका प्रारम्भ प्राकृत से माना है और कहा है कि इसके बाद संस्कृत भाषा में यह परम्परा आयी है।[3]

अगरचन्द नाहटा के अनुसार, 'सतसई संज्ञक रचनाओं की परम्परा राजा सातवाहन द्वारा रचित 'प्राकृत गाथा सप्तशती' से प्रारम्भ होती है। श्रृंगार प्रधान यह रचना महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गयी है और इसमें सात सौ आर्या छन्द हैं।[4]

वास्तव में भारतीय साहित्य में सतसई परम्परा का आरम्भ पाँचवीं शताब्दी में कवि 'हाल' द्वारा विरचित 'गाहा सतसई' से माना जाता है। आगे चलकर प्राकृत में 'बज्जालग्ग' संस्कृत में अनेक शतक (अमरुक शतक, श्रृंगार शतक आदि) रचे गये।

प्राकृत (अतीसरी प्राकृत अपभ्रंश) और संस्कृत की इस मुक्तक परम्परा को मध्यकाल में हिन्दी कवियों ने अपनाकर इसे नूतन विकास की दिशा प्रदान की। हिन्दी साहित्य में सतसई परम्परा का आरम्भ गोस्वामी तुलसीदास की 'तुलसी सतसई' से माना गया है जो 17वीं शताबदी की रचना है। समकालीन कवि रहीम ने भी उसी कालखण्ड में 'रहीम सतसई' रची। 'तुलसी सतसई' में 747 दोहे हैं। इनमें भक्ति, ज्ञान और तत्कालीन राजनीति (कुछ दोहों में) पर कवि का मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।

'रहीम सतसई' में आजकल केवल 300 दोहे ही प्राप्त हैं, जिनमें जीवन के विविध पक्षों पर उद्देश्यात्मक शैली में प्रकाश डाला गया है।

इस श्रृंखला में मतिराम की 'मतिराम सतसई' अगली कड़ी के रूप में अठारहवीं शताब्दी में रची गयी, जिसमें 703 दोहे हैं जो अधिकतर प्रेम और श्रृंगार से सम्बन्धित हैं।

इसी अठारहवीं शती में कविवर बिहारी की 'बिहारी सतसई' इस परम्परा की श्रेष्ठ रचना है। संवत् 1742 में रचित इस सतसई के 713 दोहों में श्रृंगार सम्बन्धी दोहों की संख्या सर्वाधिक है, किन्तु बिहारी ने अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी यथासम्भव अंकन–प्रत्यंकन किया है।

अठारहवीं शताब्दी में ही पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' नामक कवि ने 'रसनिधि सतसई' में प्रेम और श्रृंगार को प्रमुखतः अभिव्यक्त किया है। यह सतसई अधिकांश रूप में 'बिहारी सतसई' से प्रभावित है। संवत् 1761 में, कवि वृन्द ने अपनी 'वृन्द सतसई' में मुख्यतः नीतिपरक दोहों के माध्यम से स्वयं को प्रतिष्ठित किया। संवत् 1860 में कवि रामसहायदास ने 'राम सतसई' लिखी। वास्तव में इसे श्रृंगार सतसई कहना अधिक उपयुक्त लगता है। इसमें कुल 727 दोहे हैं।

इस परम्परा की अगली कड़ी है 'विक्रम सतसई'। बुन्देलखण्ड के राजा विक्रमसिंह ने संवत् 1839 से 1886 तक के अपने शासनकाल के दौरान श्रृंगार दोहों के रूप में इसे रचा। इस पर भी बिहारी का प्रभाव देखा जाता है। इसमें कुल दोहों की संख्या 742 है।

हिन्दी–सतसई परम्परा की आधुनिक कड़ी में, कवि वियोगी 'हरि' ने 'वीर सतसई' 1927 में रची। इसके सारे दोहे वीर रस प्रधान हैं। कवि ने इस सतसई की रचना करके, श्रृंगार के कुहराच्छन्न परिवेश को ही नहीं तोड़ा बल्कि इस परम्परा को एक युगापेक्षित दिशा की ओर मोड़ा भी।

आज हिन्दी में नव्यतर विधाओं के रूप में, एक विडम्बनापूर्ण मध्यान्तर के बाद छन्दों की वापसी हुई है। नवगीत गजल और दोहे बखूबी लिखे जा रहे हैं। दोहा सतसई का तो पुनः प्रचलन हुआ हैं। हरियाणा में भी यह परम्परा मिलती है, जिसका पारम्परिक विवरण इस प्रकार है।

मनीषी सतसई :

डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी द्वारा रचित 'मनीषी सतसई' सन् 1996 में सूर्यप्रभा प्रकाशन, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुई है। इस रचना में 777 दोहे हैं जिनका वर्गीकरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है–मार भले पुचकार, गुरुवर करते पार, मैं भी तेरा नूर, भगतसिंह से सीख, परिवर्तन अनिवार्य, यही कला से सीख, यह जड़ता की जीत, कल क्या होगा, सुगन्ध, रहा दर्द चिंघाड़, पहला–पहला प्यार, नपफरत से मत सींच, ढीलू–ढीलू लोग, हुआ नीड़ नीलाम, महंगी है ये छेड़, मौसम आदमखोर, सन्त सत्य का गोंद, इसका मन्त्रा अचूक, दुनिया सब संसार, आशा है आकाश, विनय पुष्पी की धार, मन के रंग हजार, कर लो कितनी जाँच, कड़वा है शहतूत, हो जाता अन्याय, पावन कावड़ आँख, धागों का मधुमास, माँ को तो मत बाँट, खूब मनाओ मोद, है दहेज अंगरेज़, तब ही शाबास, तजो नहीं ईमान, कद से बड़ा न दीख, दान तभी दे सूम, नहीं कपफन में जेब, जड़ ले लाख किवाड़, सब छानेगा वक्त, खुले हाथ से हाथ, सूझ–बूझ पिफर जूझ, कुछ पागल नाखून, टूट जायेगी चोंच, कोय काक–स्वभाव, ऐसा अंजन आज, जिओ मनीषी! वर्ष हजार, कवि कर्म 'मनीषी' का 'मनीषी' जैसा घाव करें गंभीर, लोक–जिह्वा पर प्रवाहित होने वाले दोहे, मनीषी सतसई : सम्पूर्णता का आकाश, अन्तर्दृष्टि, जीवन–व्यापी आयामों के दोहे, बहुभाव व्यंजक दोहे, श्रेष्ठ ओजस्वी कवि का कमाल, हृदय–संवेदना का लावा रोमांचित करने वाला, सम्पूर्णता के सहज दर्शन कराने वाला अनुभूतियों का अक्षत् तूणीर, समर्थ–शब्द शिल्पी मनीषी की सहस्त्रा काव्य धारा। इसकी भूमिका 'चिरंजीत' द्वारा लिखी गयी है। वे लिखते हैं–**'मनीषी सतसई'** में वर्तमान लोकतंत्रात्मक, सामाजिक और राजनीतिक मर्यादाओं के भीतर ये तीनों प्रवृत्तियाँ (श्रृंगार, नीति और वैराग्य) का निर्वाह हुआ है। इन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक विकृतियों, विसंगतियों तथा विद्रूपताओं को बड़ी ईमानदारी से बेनकाब किया है। ये कहीं–न–कहीं वीर रस के आदि कवि चंद वरदाई और भक्तिरस के महान कवि सूरदास की वंश परम्परा से जुड़े हुए हैं।

संस्कृति सूर्य सतसई :

महेन्द्र शर्मा 'सूर्य' कृत 'संस्कृति सूर्य सतसई' का प्रकाशन, सन् 2002 में सूर्य प्रभा प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ। एक सौ ग्यारह पृष्ठीय सतसई में 31 विषयों पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है। सतसई में समाहित विषय इस प्रकार हैं–विनय वन्दना, राष्ट्रभक्ति, जीवनचक्र, विनम्रता, दया, माया, क्षमा, श्रद्धा, दान, कर्म, अग्नि, वायु, जल, आकाश, प्राण, घर संसार, चिन्तन, सभ्यता, मर्यादा, स्वाभिमान, नैतिकता, संस्कार, शिष्टाचार, अभिवादन, आशीर्वाद, साहित्य, सन्त महिमा, गौ महिमा, ब्राह्मण महत्त्व, वेद महिमा, बिखरे मोती।

'संस्कृति सूर्य सतसई' का प्रारम्भ विनय–वन्दना से हुआ है। सतसई के प्रथम दो दोहों में माँ सरस्वती, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश की स्तुति करते हुए कवि कहता है–

पहले सुमिरूं शारदा, शंकर गौरि गणेश,
तीन देव रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश।
माँ सरस्वती दो मुझे, शब्द–ज्ञान का मान,
विद्या विनय विवेक का, दो मुझको वरदान।।

साहित्य का महत्त्व सर्वोपरि है। इसका प्रयोजन महान् है। साहित्य सद्ग्रन्थ है जो ज्ञान–पिपासा को शान्त करके मंगल मार्ग की ओर प्रशस्त करता है–

लक्ष्य यही साहित्य का, हितकर हो सद्ग्रंथ।
ज्ञान–पिपासा शांत हो, दीखे मंगल पंथ।।

भाषा, भाव एवं प्रस्तुति की दृष्टि से यह ग्रन्थ उत्तम बन पड़ा है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है तथा अलंकारों से युक्त है।

दोहा सप्तशती :

श्री उदयभानु 'हंस' कृत 'दोहा सप्तशती' का प्रकाशन सन् 2005 में हुआ है। 713 दोहों के

अंतर्गत कवि ने मुख्य सात धाराओं में जीवन के विविध आयामों को समेटा है। इसके शीर्षक हैं–समाज–संस्कृति, प्रकृति–सुषमा, सूक्ति–सुमन, रस शृंगार, युग परिवेश, धर्म–दर्शन, मधुपर्क। सतसई का प्रारम्भ पारिवारिक परिवेश से जुड़े दोहों से होता है जिनमें माता, पिता, बहन, भाई तथा पत्नी आदि के साथ भारतीय नारी, महानगरीय, परिवेश, पश्चिमी सभ्यता और सामाजिक भाव बोध के चित्र भी दर्शनीय हैं। कुछ बानगी देखें–

पुत्र के लिये है सदा माँ देवी का रूप।
शरद पूर्णिमा–सी सुखद जयों हिमगिरि की धूप।।
पिता सुरक्षा क्वच है बूढ़ा हो कि अधेड़।
है आँधी तूफान में वह बरगद का पेड़।।

कवि ने राजनीति पर भी व्यंग्य किया है। राजनेता निष्काम सेवा को त्यागकर अनी जेबें भरने में लगे हुए हैं। यथा–

जिन लोगों का ध्येय था, जन सेवा निष्काम।
जेबें भरना रह गया, अब उनका बस काम।।
एक बार कुर्सी मिली, लगी न पिफर कुछ देर।
दीन दरिद्र कबीर से, झट बन गए कुबेर।।

भाषा, भाव एवं प्रस्तुति की दृष्टि से यह सतसई उत्तम बन पड़ी है। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ विशु(खड़ी बोली है। अलंकार, छन्द, बिम्ब आदि की दृष्टि से यह कृति अप्रतिम है।

शक्ति सतसई :

डॉ. मेजर शक्तिराज कृत 'शक्ति सतसई' का प्रकाशन सन् 2005 में पूनम प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। इस सतसई में 730 दोहे हैं। कविवर शक्तिराज ने इस सतसई में 63 विषयों का गुंफन किया है। कवि ने सतसई का प्रारम्भ शारदा वन्दन से किया है। कवि का कथन है कि माँ सरस्वती ज्ञान की प्रदाता है। यथा–

सरस्वती माँ ज्ञान दे, दूर करो अज्ञान।
उनके ही आशीष से, मिले मान–सम्मान।।
सरस्वती माँ शक्ति करे, दे ऐसा वरदान।
भले–बुरे को कर सके, पलभर में पहचान।।

सद्गुणों से ही संसार में सुवास फैलती है। सेवा कभी भी निष्फल नहीं जाती–

सद्गुण की संसार में, फैले सदा सुवास।
सेवा निष्पफल जाय न, रख मन में विश्वास।।

कुल मिलाकर यह सतसई भाषा, प्रस्तुति की दृष्टि से उत्तम बन पड़ी है। अलंकारों का भी सुष्ठु प्रयोग हुआ है। कवि ने अनेक विषयों का सहज–सरल और रोचक भाषा में वर्णन किया है।

हरि सतसई :

हरिसिंह शास्त्री कृत 'हरि सतसई' में कुल मिलाकर 711 दोहे हैं। कवि ने वर्ण्य विषय के अनुसार दोहों का वर्गीकरण भी किया है। इस कृति में कुल 40 उपविषय गुंफित हैं। 'हरि सतसई' कविवर हरिसिंह शास्त्री के प्रखर चिन्तन का परिणाम है। उन्होंने जीवन और जगत के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को अपने काव्य में संजोया है। कविवर हरिसिंह मूलतः आध्यात्मिक चेतना के कवि हैं। उन्होंने अपनी सतसई का प्रारम्भ माँ सरस्वती की वन्दना से किया है। यथा–

माँ सरस्वती भारती, विद्या की भण्डार।
मैं तुम्हें करता नमन, बनो कण्ठ का हार।।

कवि को ईश्वर की सत्ता में भी विश्वास है। सन्त कबीर ईश्वर की अवस्थिति सबकी साँसों से मानते हैं। कबीर के स्वर–में–स्वर मिलाते हुए कविवर हरि शास्त्री लिखते हैं–

मंदिर, मस्जिद न मिले, मिले न गंगा पार।
गिरिजाघर भी ना मिले, मिले साँस के तार।।

शास्त्री जी गम्भीर चिन्तक हैं। उन्होंने संसार की असारता और नश्वरता पर गम्भीर विचार किया है। मानव को उपदेश देते हुए वे कहते हैं कि मानव को मानवता नहीं भूलनी चाहिए–

नश्वर यह संसार है, नष्ट हुआ जड़–मूल।
कुछ दिन के व्यवहार में, मानवता न भूल।।

एक समाज सुधारक के रूप में कवि ने भारतीय समाज की अनेक समस्याओं को उकेरा है। भारतीय समाज में दहेज का दानव खिलखिलाकर हँस रहा है। 'हरि सतसई' भाषा भाव और प्रस्तुति की दृष्टि से एक अनुपम काव्य रचना है। कवि ने जीवन और जगत की अनेक प्रवृत्तियों को समेटने का स्तुत्य प्रयास किया है। उनके द्वारा मानवीय स्वभाव की जो व्याख्या की गयी है वह बड़ी मनोवैज्ञानिक, सुन्दर और सटीक है। उनकी सदुक्तियों को पढ़कर कबीर, तुलसी और रहीम की याद आती है। भावों की माला में शब्दों के मोती गूंथने की कला में कवि निपुण हैं। चिन्तनशील कवि ने उपदेशात्मक शैली का सहारा लेकर लोक चेतना को जगाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

आजकल कुछ ऐसी भी सतसई लिखी जा रही हैं जिनमें दोहा छन्द का पूर्ण पालन नहीं हुआ है और कविताओं को भी सतसई शीर्षकान्तर्गत समाहित कर दिया है। उदाहरण के लिए सन् 2001 में प्रकाशित कृष्णदेव कृत 'आधुनिक सतसई'। इस सतसई के दो खण्ड हैं। प्रथम भाग में 414 मुक्तक कविताएँ हैं। दूसरे भाग में 300 कविताएँ हैं। इस प्रकार मिलाकर 714 कविताएँ हैं। इस सतसई के रचयिता ने इसकी रचना प्रक्रिया और प्रेरणा के सन्दर्भ में स्वयं कहा है–

बातें अदाएँ हैं आप सबकी,
मैंने सुनी देखी तो ह्रदय तक आई,
मैं उनको न सह सका,
मैंने अपनी कलम उठाई,
शब्द से वे चित्रा बनने लगे,
जैसे प्रेमियों के खत कई,
मैं उन खतों को लगा संभालने,
बनने लगी आधुनिक सतसई।।

इस प्रकार का सतसई साहित्य पारम्परिक सतसई की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

निष्कर्ष :

वस्तुतः सतसई परम्परा का इतिहास बहुत पुराना है। संख्यापरक काव्य परम्पराओं का सतसई एक अनूठा रूप है। प्राकृत में यह भी परम्परा मिलती है। हिन्दी में पचासों सतसइयों की रचना हुई है। हरियाणा भी इस क्षेत्रा में पीछे नहीं रहा। हरियाणा की सतसई परम्परा की खोज के सन्दर्भ में एक हस्तलिखित सतसई देखने में आयी है। जिसका शीर्षक है–'निर्मल सतसई'। इसके रचयिता नारनौल निवासी श्री पुरुषोत्तमदास निर्मल हैं। उक्त विवरण से यह सम्भावना की जा सकती है कि हरियाणा में हिन्दी सतसई परम्परा का भविष्य उज्ज्वल है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य कोष (भाग–1), पृ. 874
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 26
3. पं. शिवनाथ प्रसाद मिश्र, बिहारी की वाग्विभूति, पृ. 106
4. अगरचंद नाहटा, सतसई संज्ञक रचनाएँ, सप्तसिन्धु दिसम्बर, 1963